leaders, when motivated by self-interest or personal gain, often make decisions that benefit a particular group or region at the expense of others, deepening divisions. The fight against corruption and the promotion of ethical governance are vital in building a united nation. Transparent and accountable institutions that serve the interests of the entire nation, rather than specific political or economic elites, are essential for fostering national integration.

Conclusion

National integration in India is a complex process that requires addressing several social and ethical issues that continue to divide the nation. While India's diversity is its strength, it also poses challenges to the creation of a harmonious society. To achieve true national integration, it is essential to overcome religious intolerance, caste-based discrimination, regionalism, gender inequality, economic disparity, and political corruption. Citizens, political leaders, and civil society must come together to create an inclusive environment where every individual, regardless of their background, feels a sense of belonging and equality. Only then can India achieve its vision of a united and integrated nation where diversity is celebrated, and unity is the guiding principle.

****

References:

1. Andersen, S C, and H S Nielsen (2019), "Learning from Performance Information", Journal of Public Administration Research and Theory.
2. Bjorklund, A and K Salvanes (2011), "Education and Family Background: Mechanisms and Policies", in E Hanushek, S Machin and L Woessmann (eds), Handbook of the Economics of Education, Vol. 3.
3. Burgess, S and E Greaves (2013), "Test Scores, Subjective Assessment, and Stereotyping of Ethnic Minorities", Journal of Labor Economics 31 (3): 535–576
4. Chipata Day Secondary School (2020). Performance analysis report for 2019 school certificate examinations. Chipata, Zambia.
5. Creswell, J. W. (2017). Educational Research: Planning, conducting, and evaluating quantitative and qualitative research. 4th edition.

लोक साहित्य तथा शिष्ट साहित्य का स्वरूप

प्रो. कविता त्यागी
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
मेरठ कॉलिज, मेरठ
ईमेल-tkavita953@gmail.com

सारांश-लोक जीवन की गरिमा को प्राचीन काल से ही स्वीकार किया गया है। वैदिक विधि निषेधों के समानान्तर लोक व्यवहार की धारा निरन्तर प्रवाहित होती रही। यद्यपि लोक शब्द का प्रयोग जिन अर्थों में प्राचीन काल से हुआ है, लोक साहित्य में समग्रतः उन्हीं अर्थों में नहीं प्रयुक्त है। आजकल लोक शब्द जन जीवन तथा लोक व्यवहार की ओर अवश्य संकेत करता है। इसलिए 'सहितस्य भावः साहित्यम् हितेन सह सहितम् सः साहित्यम् की व्याख्या के अनुसार साहित्य में हित का भाव स्वतः निहित है। इसलिए लोक साहित्य का महत्व शिष्ट साहित्य की अपेक्षा कहीं अधिक है, क्योंकि लोक साहित्य की रचना लोक के हित के लिए है जबकि शिष्ट साहित्य अधिकतर स्वान्तः सुखाए और परोक्ष रूप से लोक हिताए होती है।

मुख्य शब्द-अन्तरंग, समग्रतः सर्वकालिक, प्रसुप्त, प्रांजल, नैसर्गिक, अवसाद, साधारणीकृत, स्फुटित, देदीप्यमान, उपजीवी

जीवन से सम्बन्धित अनेक बातें शिष्ट साहित्य में छूट जाती है किन्तु लोक साहित्य में जन-जीवन का अन्तरंग और पूर्ण चित्र चित्रित होता है। लोक साहित्य सर्वकालिक, सर्वदेशीय और सर्व जनीन होता है। इसमें मानव मात्र का चिरन्तन और चिर प्रसुप्त भावनाएं समाहित रहती हैं। लोक साहित्य में पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक का समस्त मानव समुदाय अपनी भावनाओं, कामनाओं, इच्छाओं और अभिलाषाओं को प्रतिफलित होते देखता है। जीवन का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है जो इससे अछूता रह जाए। सभी को अपनी सीमा में समेट लेता है।[1]

लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य में दोनों का अन्तर स्पष्ट करते हुए ताराकान्त मिश्र कहते हैं 'लोक साहित्य समस्त जनता का साहित्य होता है किन्तु शिष्ट साहित्य शिक्षित एवं संस्कृत व्यक्तियों का साहित्य है। लोक साहित्य के प्रणेता अज्ञात होते हैं, शिष्ट साहित्य के रचियता ज्ञात। लोक साहित्य मौखिक और परम्परागत् होते हैं परन्तु शिष्ट साहित्य की भाषा प्रायः ललित प्रांजल और परिष्कृत होती है। लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य के सम्बन्ध में लिखा है कि- 'लोक साहित्य मानव समाज के उन लोगों का साहित्य है जो आधुनिक सभ्यता, संस्कृति एवं नागरिक संस्कारों से दूर अपनी आदिम अवस्था से आबद्ध सहज अवस्था में जीवन व्यतीत करते हैं। इस साहित्य में समस्त भाव धारा विरामहीन एवं अन्तहीन रूप में प्रवाहित होती रहती है। परम्परा इस साहित्य का आधार है और जनभाषा इसकी अभिव्यंजना का माध्यम। श्रुति एवं स्मृति के द्वारा यह जन जीवन में संचित और सुरक्षित रहता है। यह जनता के नैसर्गिक उद्गारों की सहज, स्वाभाविक तथा मौखिक अभिव्यक्ति का साहित्य है जिसमें उसकी सम्पूर्ण आशा, आकांक्षा, उल्लास, अवसाद, चिन्तन-मनन तथा धारणाओं को वाणी मिलती है।[2] इसमें कोई भी दिखावटीपन नहीं रहता है बल्कि स्वतः स्वरूप में रहता है। लोक साहित्य के प्रधान गुण, स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता और सरलता के विषय में डॉ. कृष्ण चन्द्र शर्मा ने कहा है- 'लोक साहित्य वह साहित्य है जो जंगल में खिलने वाले फूल की तरह स्वाभाविक, आकाश में उडने वाली चिडियों की भांति स्वच्छन्द गंगा की निर्मल

धारा के समान सरल एव पवित्र था। उस साहित्य का जो अंग आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है वह लोक साहित्य है।3 लोक साहित्य जीवन का सहज और अकृत्रिम रूप है। डॉ. सन्तराम अनिल के कथनानुसार- "लोक साहित्य में अभ्यास और अध्ययन की अपेक्षा नहीं होती, जिसमें कर्ता का व्यक्तित्व साधारणीकृत हो जाता है और जिसमें आदि मानस के कुछ न कुछ अवशेष विद्यमान हो जाता है और जिसमें आदि मानस के कुछ न कुछ अवशेष विद्यमान हो और जिसे एक पीढी दूसरी पीढी को सौंपती चला जाए लोक साहित्य कहलाता है।"[4] इस ओर कुन्दनलाल उप्रेती ने लिखा है 'लोक साहित्य श्रुति या परम्परा पर आधारित होता है जबकि शिष्ट साहित्य श्रुति या परम्परा पर आधारित नहीं होता है, अर्थात् लोक साहित्य मौखिख और शिष्ट साहित्य लिपि बद्ध होता है। डॉ. दीनदयाल गुप्त ने कहा है- 'शिष्ट साहित्य में भाव और विचारों का प्रकाशन कलात्मक ढंग से भाषा और कथन शैली के परिष्कार के साथ होता है, परन्तु लोक साहित्य में वह बिना किसी सजावट के स्वतः स्फुटित होता है। डॉ. रामनरेश त्रिपाठी ने भी मत दिया है- 'शिष्ट साहित्य में अलंकारों पर बहुत बल दिया जाता है परन्तु लोक साहित्य में अलंकारों के प्रति कोई आग्रह नहीं है। यह तो वन्य कुसुम की भांति बिना संवारे ही अपने प्राकृतिक सौन्दर्य से देदीप्यमान रहता है।[5] यही उसकी मूल विशेषता को प्रदर्शित के साथ भव्यता को प्रकट करता है।

पाश्चात्य विद्वान फ्रैंक सिजविक ने लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य के सम्बन्ध में लिखा है 'लोक साहित्य में रचियता का व्यक्तित्व नहीं मिलता है परन्तु शिष्ट साहित्य में कलाकार का व्यक्तित्व झलकता है। इस ओर रूसी विद्वान सोकोलोव के विचार देखिए- 'लोक साहित्य अतीत की गूंज भी है और वर्तमान की सशक्त आवाज भी। बाटकिन ने भी कहा है 'लिपिबद्ध साहित्य लोक साहित्य नहीं है। लोक साहित्य में अन्तर्भूत मानव भावनाएं दीर्घकाल से मौलिक धरातल पर विचरण करती हुई चली आ रही है। लोक की मौलिक भावाभिव्यक्ति को लोक साहित्य की आवश्यक तत्व माना है। लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य सर्वथा एक दूसरे से भिन्न हैं। लोक साहित्य की कतिपय विशेषताएं उसे शिष्ट साहित्य से पृथक कर उसके स्वरूप व पृथक अस्तित्व का निर्धारण करती हैं। लोक साहित्य में शिष्ट समाज द्वारा ग्राह्य विचारों और भावो की गौणता तथा परम्परागत् एवं मौखिख रूप में आदान-प्रदान होने वाले विचारों की प्रमुखता होती है। लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य में भेद होते हुए भी इनमें उपजीव्य और उपजीवी का अटूट सम्बन्ध है। लोक साहित्य शिष्ट साहित्य का पोषक होने के नाते उपजीव्य और शिष्ट साहित्य पोष्य होने के नाते उपजीवी है। इस सम्बन्ध में डॉ. श्रीराम शर्मा का कहना है 'लोक साहित्य को शिष्ट साहित्य का जनक कहने में इसलिए संकोच नहीं होना चाहिए कि शिष्ट और शास्त्रीय मर्यादाओं में बंधे साहित्य के लिए उत्स भूमि कहीं प्राप्त थी तो लोक साहित्य में। लोक कथाओं से प्रेरणा प्राप्त कर शिष्ट साहित्यिक कहानी नामक विधा का उद्भव एवं विकास हुआ है। लोकगीतों की विकास समान स्थिति ही शिष्ट गीतियों के रूप में दिखलाई देती है।"[6] अतः लोक कथाओं से प्रेरणा शिष्ट साहित्य लेकर निरन्तर गतिमान रहता है।

लोक साहित्य में परम्परा एवं रीतिरिवाजों की ऋणी तथा इन दोनों की उपकारिणी लोक कल्पना प्रधान होती है। लोक साहित्य मौखिक परम्परा से चला आता है जबकि शिष्ट साहित्य निश्चित रूप से लिखित होता है। लोक साहित्य अब न केवल मौखिक बल्कि लिखित रूप में प्राप्त होता है जबकि शिष्ट साहित्य निश्चित रूप से लिखित होता है। इसका बराबर प्रकाशन बराबर होता रहता है। जनपदीय जनों द्वारा लोक साहित्य की भाषा स्वतन्त्र जीवित लोकभाषा होती है जबकि शिष्ट साहित्य की भांति शास्त्रीय सिद्धान्तों का अंकुश उसमें नहीं होता है। लोक साहित्य के रचियता का नाम अंकित नहीं होता जबकि शिष्ट साहित्य की रचियता का नाम आवश्यक रूप से ज्ञात होता है। आधुनिक युग में रचित लोक साहित्य में लोक कवि के नाम की छाप लगाई जाती है। लोक साहित्य तर्कहीन एवं कल्पना प्रधान होने के साथ -साथ लोक का लोक द्वारा लोक के लिए होता है। लोक साहित्य में लोक की अभिव्यक्ति होती है किन्तु शिष्ट साहित्य में एक वर्ग या व्यक्ति की अभिव्यक्ति होती है।

निष्कर्ष-

लोक साहित्य शिष्ट साहित्य से अधिक व्यापक, स्वाभाविक तथा लोकप्रिय होता है। प्राचीन काल से यह सजीव, सरस एवं प्रवाहपूर्ण लोक साहित्य यांत्रिक शिष्ट साहित्य के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता रहा है। इसलिए लोक साहित्य किसी प्रकार के नियमों के बन्धनों से मुक्त विस्तृत परिधि वाली स्वच्छन्द गति से प्रवाहमान एक धारा है। शिष्ट साहित्य उसके चुने हुए कुछ भावों को लेकर सजा-संवरा नहर है जिसे स्वतन्त्र रूप से नहीं बहने दिया जाता है।

****

सन्दर्भ सूची

1. आदेश बाला, अमृतलाल नागर के उपन्यासों में लोकतत्व, पृ. 15
2. ताराकान्त मिश्र, डॉ. सुरेश चन्द्र त्यागी, लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य, पृ. 38
3. डॉ0 कृष्ण चन्द्र शर्मा, लोक साहित्य की रूपरेखा, पृ. 1
4. डॉ. सन्तराम अनिल, कन्नौजी लोक साहित्य, पृ. 25
5. डॉ. रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, पृ. 69
6. डॉ. श्रीराम शर्मा, लोक साहित्य सिद्धान्त और प्रयोग, पृ. 247